सौभाग्य के कोड़े - मुंशी प्रेमचंद

1

लड़के क्या अमीर के हों, क्या गरीब के, विनोदशील हुआ ही करते हैं। उनकी चंचलता बहुधा उनकी दशा और स्थिति की परवा नहीं करती। नथुवा के माँ-बाप दोनों मर चुके थे, अनाथों की भाँति वह राय भोलानाथ के द्वार पर पड़ा रहता था। रायसाहब दयाशील पुरुष थे। कभी-कभी एक-आधा पैसा दे देते, खाने को भी घर में इतना जूठा बचता था कि ऐसे-ऐसे कई अनाथ अफर सकते थे, पहनने को भी उनके लड़कों के उतारे मिल जाते थे, इसलिए नथुवा अनाथ होने पर भी दुखी नहीं था। रायसाहब ने उसे एक ईसाई के पंजे से छुड़ाया था। इन्हें इसकी परवा न हुई कि मिशन में उसकी शिक्षा होगी, आराम से रहेगा; उन्हें यह मंजूर था कि वह हिंदू रहे। अपने घर के जूठे भोजन को वह मिशन के भोजन से कहीं पवित्र समझते थे। उनके कमरों की सफाई मिशन की पाठशाला की पढ़ाई से कहीं बढ़कर थी। हिंदू रहे, चाहे जिस दशा में रहे। ईसाई हुआ तो फिर सदा के लिए हाथ से निकल गया।

नथुवा को बस रायसाहब के बँगले में झाड़ू लगा देने के सिवाय और कोई काम न था। भोजन करके खेलता-फिरता था। कर्मानुसार ही उसकी वर्णव्यवस्था भी हो गयी। घर के अन्य नौकर-चाकर उसे भंगी कहते थे और नथुवा को इसमें कोई एतराज न होता था। नाम की स्थिति पर क्या असर पड़ सकता है, इसकी उस गरीब को कुछ खबर न थी। भंगी बनने में कुछ हानि भी न थी। उसे झाड़ू देते समय कभी पैसे पड़े मिल जाते, कभी और कोई चीज। इससे वह सिगरेट लिया करता था। नौकरों के साथ उठने-बैठने से उसे बचपन ही में तम्बाकू, सिगरेट और पान का चस्का पड़ गया।

रायसाहब के घर में यों तो बालकों और बालिकाओं की कमी न थी, दरजनों भाँजे-भतीजे पड़े रहते थे; पर उनकी निज की संतान केवल एक पुत्री थी, जिसका नाम रत्ना था। रत्ना को पढ़ाने को दो मास्टर थे, एक मेमसाहब अँग्रेजी पढ़ाने आया करती थीं। रायसाहब की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि रत्ना सर्वगुण आगरी हो और जिस घर में जाय, उसकी लक्ष्मी बने। वह उसे अन्य बालकों के साथ न रहने देते। उसके लिए अपने बँगले में दो कमरे अलग कर दिये थे; एक पढ़ने के लिए, दूसरा सोने के लिए। लोग कहते हैं, लाड़-प्यार से बच्चे जिद्दी और सरीर हो जाते हैं। रत्ना इतने लाड़-प्यार पर भी बड़ी सुशील बालिका थी। किसी नौकर को 'रे' न पुकारती, किसी भिखारी तक को न दुत्कारती। नथुवा को वह पैसे, मिठाइयाँ दे दिया करती थी। कभी-कभी उससे बातें भी किया करती थी। इससे वह लौंडा उसके मुँह लग गया था।

एक दिन नथुवा रत्ना के सोने के कमरे में झाड़ू लगा रहा था। रतना दूसरे कमरे में मेमसाहब से अँग्रेजी पढ़ रही थी। नथुवा की शामत जो आयी तो झाड़ू लगाते-लगाते उसके मन में यह इच्छा हुई कि रत्ना के पलंग पर सोऊँ; कैसी उजली चादर बिछी हुई है, गद्दा कितना नरम और मोटा है, कैसा सुन्दर दुशाला है ! रत्ना इस गद्दे पर कितने आराम से सोती है, जैसे चिड़िया के बच्चे घोंसले में। तभी तो रत्ना के हाथ इतने गोरे और कोमल हैं, मालूम होता है, देह में रुई भरी हुई है। यहाँ कौन देखता है। यह सोचकर उसने पैर फर्श से पोंछे और चटपट पलंग पर आकर लेट गया और दुशाला ओढ़ लिया। गर्व और आनंद से उसका हृदय पुलकित हो गया। वह मारे खुशी के दो-तीन बार पलंग पर उछल पड़ा। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो मैं रुई में लेटा हूँ। जिधर करवट लेता था, देह अंगुल-भर नीचे धँस जाती थी। यह स्वर्गीय सुख मुझे कहाँ नसीब ! मुझे भगवान् ने रायसाहब का बेटा क्यों न बनाया ? सुख का अनुभव होते ही उसे अपनी दशा का वास्तविक ज्ञान हुआ और चित्त क्षुब्ध हो गया। एकाएक रायसाहब किसी जरूरत से कमरे में आये तो नथुवा को रत्ना के पलंग पर लेटे देखा। मारे क्रोध के जल उठे। बोले- क्यों बे सुअर, तू यह क्या कर रहा है ?

नथुवा ऐसा घबराया मानो नदी में पैर फिसल पड़े हों। चारपाई से कूद कर अलग खड़ा हो गया और फिर झाड़ू हाथ में ले ली।

रायसाहब ने फिर पूछा- यह क्या कर रहा था, बे ?

नथुवा- कुछ तो नहीं सरकार !

रायसाहब- अब तेरी इतनी हिम्मत हो गयी है कि रत्ना की चारपाई पर सोये ? नमकहराम कहीं का ! लाना मेरा हंटर।

हंटर मँगवाकर रायसाहब ने नथुवा को खूब पीटा। बेचारा हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था, मगर रायसाहब का क्रोध शांत होने का नाम न लेता था। सब नौकर जमा हो गये और नथुवा के जले पर नमक छिड़कने लगे। रायसाहब का क्रोध और भी बढ़ा। हंटर हाथ से फेंककर ठोकरों से मारने लगे। रत्ना ने यह रोना सुना तो दौड़ी हुई आयी और समाचार सुनकर बोली- दादाजी बेचारा मर जायगा; अब इस पर दया कीजिए।

रायसाहब- मर जायगा, उठवाकर फेंकवा दूँगा। इस बदमाशी का मजा तो मिल जायगा।

रत्ना- मेरी ही चारपाई थी न, मैं उसे क्षमा करती हूँ।

रायसाहब- जरा देखो तो अपनी चारपाई की गत। पाजी के बदन की मैल भर गयी होगी। भला, इसे सूझी क्या ? क्यों बे, तुझे सूझी क्या ?

यह कर रायसाहब फिर लपके; मगर नथुवा आकर रत्ना के पीछे दुबक गया। इसके सिवा और कहीं शरण न थी। रत्ना ने रोककर कहा- दादाजी, मेरे कहने से अब इसका अपराध क्षमा कीजिए।

रायसाहब- क्या कहती हो रत्ना, ऐसे अपराधी कहीं क्षमा किये जाते हैं। खैर, तुम्हारे कहने पर छोड़ देता हूँ, नहीं तो आज जान लेकर छोड़ता। सुन बे, नथुवा, अपना भला चाहता है तो फिर यहाँ न आना, इसी दम निकल जा, सुअर, नालायक !

नथुवा प्राण छोड़कर भागा। पीछे फिरकर न देखा। सड़क पर पहुँचकर वह खड़ा हो गया। यहाँ रायसाहब उसका कुछ नहीं कर सकते थे। यहाँ सब लोग उनकी मुँहदेखी तो न कहेंगे। कोई तो कहेगा कि लड़का था, भूल ही हो गयी तो क्या प्राण ले लीजिएगा ? यहाँ मारे तो देखूँ, गाली देकर भागूँगा, फिर कौन मुझे पा सकता है। इस विचार से उसकी हिम्मत बँधी। बँगले की तरफ मुँह करके जोर से बोला- यहाँ आओ तो देखें, और फिर भागा कि कहीं रायसाहब ने सुन न लिया हो।

2

नथुवा थोड़ी ही दूर गया था कि रत्ना की मेम साहिबा अपने टमटम पर सवार आती हुई दिखायी दीं। उसने समझा, शायद मुझे पकड़ने आ रही हैं। फिर भागा, किंतु जब पैरों में दौड़ने की शक्ति न रही तो खड़ा हो गया। उसके मन ने कहा, वह मेरा क्या कर लेंगी, मैंने उनका कुछ बिगाड़ा है ? एक क्षण में मेम साहिबा आ पहुँचीं और टमटम रोककर बोलीं- नाथू, कहाँ जा रहे हो ?

नथुवा- कहीं नहीं।

मेम.- रायसाहब के यहाँ फिर जायगा तो वह मारेंगे। क्यों नहीं मेरे साथ चलता। मिशन में आराम से रह। आदमी हो जायगा।

नथुवा- किरस्तान तो न बनाओगी ?

मेम.- किरस्तान क्या भंगी से भी बुरा है, पागल !

नथुवा- न भैया, किरस्तान न बनूँगा।

मेम.- तेरा जी चाहे न बनना, कोई जबरदस्ती थोड़े ही बना देगा। नथुवा थोड़ी देर तक टमटम के साथ चला; पर उसके मन में संशय बना हुआ था। सहसा वह रुक गया। मेम साहिबा ने पूछा- क्यों, चलता क्यों नहीं ?

नथुवा- मैंने सुना है, मिशन में जो कोई जाता है किरस्तान हो जाता है। मैं न जाऊँगा। आप झाँसा देती हैं।

मेम.- अरे पागल, वहाँ तुझे पढ़ाया जायगा, किसी की चाकरी न करनी पड़ेगी। शाम को खेलने को छुट्टी मिलेगी। कोट-पतलून पहनने को मिलेगी। चल के दो-चार दिन देख तो ले।

नथुवा ने इस प्रलोभन का उत्तर न दिया। एक गली से होकर भागा। जब टमटम दूर निकल गया तो वह निश्चिंत होकर सोचने लगा- जाऊँ ? कहीं कोई सिपाही पकड़कर थाने न ले जाय। मेरी बिरादरी के लोग तो वहाँ रहते हैं। क्या वह मुझे अपने घर रखेंगे। कौन बैठ कर खाऊँगा, काम तो करूँगा। बस, किसी को पीठ पर रहना चाहिए। आज कोई मेरी पीठ पर होता तो मजाल थी कि रायसाहब मुझे यों मारते। सारी बिरादरी जमा हो जाती, घेर लेती, घर की सफाई बंद हो जाती, कोई द्वार पर झाड़ू तक न लगाता। सारी रायसाहबी निकल जाती। यह निश्चय करके वह घूमता-फिरता भंगियों के मुहल्ले में पहुँचा। शाम हो गयी थी, कई भंगी एक पेड़ के नीचे चटाइयों पर बैठे शहनाई और तबल बजा रहे थे। वह नित्य इसका अभ्यास करते थे। यह उनकी जीविका थी। गान-विद्या की यहाँ जितनी छीछालेदर हुई है, उतनी और कहीं न हुई होगी। नथुवा जाकर वहाँ खड़ा हो गया। उसे बहुत ध्यान से सुनते देखकर एक भंगी ने पूछा- कुछ गाता है ?

नथुवा- अभी तो नहीं गाता; पर सिखा दोगे तो गाने लगूँगा।

भंगी- बहाना मत कर, बैठ; कुछ गाकर सुना, मालूम तो हो कि तेरे गला भी है या नहीं, गला ही न होगा तो क्या कोई सिखायेगा।

नथुवा मामूली बाजार के लड़कों की तरह कुछ-न-कुछ गाना जानता ही था, रास्ता चलता तो कुछ-न-कुछ गाने लगता था। तुरंत गाने लगा। उस्ताद ने सुना। जौहरी था, समझ गया यह काँच का टुकड़ा नहीं। बोला- कहाँ रहता है ?

नथुवा ने अपनी रामकहानी सुनायी, परिचय हो गया। उसे आश्रय मिल गया और विकास का वह अवसर मिल गया, जिसने उसे भूमि से आकाश पर पहुँचा दिया।

3

तीन साल उड़ गये, नथुवा के गाने की सारे शहर में धूम मच गयी। और वह केवल एक गुणी नहीं, सर्वगुणी था; गाना, शहनाई बजाना, पखावज, सारंगी, तम्बूरा, सितार- सभी कलाओं में दक्ष हो गया। उस्तादों को भी उसकी चमत्कारिक बुद्धि पर आश्चर्य होता था। ऐसा मालूम होता था कि उसने पहले ही पढ़ी हुई विद्या दुहरा ली है। लोग दस-दस सालों तक सितार बजाना सीखते रहते हैं और नहीं आता, नथुवा को एक महीने में उसके तारों का ज्ञान हो गया। ऐसे कितने ही रत्न पड़े हुए हैं, जो किसी पारखी से भेंट न होने के कारण मिट्टी में मिल जाते हैं।

संयोग से इन्हीं दिनों ग्वालियर में एक संगीत-सम्मेलन हुआ। देश- देशांतरों से संगीत के आचार्य निमंत्रित हुए। उस्ताद घूरे को भी नेवता मिला। नथुवा इन्हीं का शिष्य था। उस्ताद ग्वालियर चले तो नाथू को भी साथ लेते गये। एक सप्ताह तक ग्वालियर में बड़ी धूमधाम रही। नाथूराम ने वहाँ खूब नाम कमाया। उसे सोने का तमगा इनाम मिला। ग्वालियर के संगीत-विद्यालय के अध्यक्ष ने उस्ताद घूरे से आग्रह किया कि नाथूराम को संगीत-विद्यालय में दाखिल करा दो। यहाँ संगीत के साथ उसकी शिक्षा भी हो जायगी। घूरे को मानना पड़ा। नाथूराम भी राजी हो गया।

नाथूराम ने पाँच वर्षों में विद्यालय की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त कर ली। इसके साथ-साथ भाषा, गणित और विज्ञान में उसकी बुद्धि ने अपनी प्रखरता का परिचय दिया। अब वह समाज का भूषण था। कोई उससे न पूछता था, कौन जाति हो। उसका रहन-सहन, तौर-तरीका अब गायकों का-सा नहीं, शिक्षित समुदाय का-सा था। अपने सम्मान की रक्षा के लिए वह ऊँचे वर्णवालों का-सा आचरण रखने लगा। मदिरा-मांस त्याग दिया, नियमित रूप से संध्योपासना करने लगा। कोई कुलीन ब्राह्मण भी इतना आचार-विचार न करता होगा। नाथूराम तो पहले ही उसका नाम हो चुका था। अब उसका कुछ और सुसंस्कार हुआ। वह ना. रा. आचार्य मशहूर हो गया। साधारणतः लोग 'आचार्य' ही कहा करते थे। राज-दरबार से उसे अच्छा वेतन मिलने लगा। 18 वर्ष की आयु में इतनी ख्याति बिरले ही किसी गुणी को नसीब होती है। लेकिन ख्याति-प्रेम वह प्यास है, जो कभी नहीं बुझती, वह अगस्त्य ऋषि की भाँति सागर को पीकर भी शांत नहीं होती। महाशय आचार्य ने योरोप को प्रस्थान किया। वह पाश्चात्य संगीत पर भी अधिकृत होना चाहते थे। जर्मनी के सबसे बड़े संगीत-विद्यालय में दाखिल हो गये और पाँच वर्षों के निरंतर परिश्रम और उद्योग के बाद आचार्य की पदवी लेकर इटली की सैर करते हुए ग्वालियर लौट आये और उसके एक ही सप्ताह के बाद मदन कम्पनी ने उन्हें तीन हजार रुपये मासिक वेतन पर अपनी शाखाओं का निरीक्षक नियुक्त किया। वह योरोप जाने के पहले ही हजारों रुपये जमा कर चुके थे। योरोप में भी ओपराओं और नाट्यशालाओं में उनकी खूब आवभगत हुई थी। कभी-कभी एक दिन में इतनी आमदनी हो जाती थी, जितनी यहाँ के बड़े-से-बड़े गवैयों को बरसों में भी नहीं होती। लखनऊ से विशेष प्रेम होने के कारण उन्होंने वहीं निवास करने का निश्चय किया।

4

आचार्य महाशय लखनऊ पहुँचे तो उनका चित्त गद्गद हो गया। यहीं उनका बचपन बीता था, यहीं एक दिन वह अनाथ थे, यहीं गलियों में कनकौए लूटते फिरते थे, यहीं बाजारों में पैसे माँगते-फिरते थे। आह ! यहीं उन पर हंटरों की मार पड़ी थी, जिसके निशान अब तक बने थे। अब वह दाग उन्हें सौभाग्य की रेखाओं से भी प्रिय लगते। यथार्थ में यह कोड़े की मार उनके लिए शिव का वरदान थी। रायसाहब के प्रति अब उनके दिल में क्रोध या प्रतिकार का लेशमात्र भी न था। उनकी बुराइयाँ भूल गयी थीं, भलाइयाँ याद रह गयी थीं; और रत्ना तो उन्हें दया और वात्सल्य की मूर्ति-सी याद आती। विपत्ति पुराने घावों को बढ़ाती है, सम्पत्ति उन्हें भर देती है ! गाड़ी से उतरे तो छाती धड़क रही थी। 10 वर्ष का बालक 23 वर्ष का जवान, शिक्षित भद्र युवक हो गया था। उसकी माँ भी उसे

देखकर न कह सकती कि यही मेरा नथुवा है। लेकिन उनकी कायापलट की अपेक्षा नगर की कायापलट और भी विस्मयकारी थी। यह लखनऊ नहीं, कोई दूसरा ही नगर था।

स्टेशन से बाहर निकलते ही देखा कि शहर के कितने ही छोटे-बड़े आदमी उनका स्वागत करने को खड़े हैं। उनमें एक युवती रमणी थी, जो रत्ना से बहुत मिलती थी। लोगों ने उससे हाथ मिलाया और रत्ना ने उनके गले में फूलों का हार डाल दिया। यह विदेश में भारत का नाम रोशन करने का पुरस्कार था। आचार्य के पैर डगमगाने लगे, ऐसा जान पड़ता था, अब नहीं खड़े रह सकते। यह वही रत्ना है। भोली-भाली बालिका ने सौंदर्य, लज्जा, गर्व और विनय की देवी का रूप धारण कर लिया है। उनकी हिम्मत न पड़ी कि रत्ना की तरफ सीधी आँखों देख सकें।

लोगों से हाथ मिलाने के बाद वह उस बँगले में आये जो उनके लिए पहले ही से सजाया गया था। उसको देखकर वे चौंक पड़े; यह वही बँगला था जहाँ रत्ना के साथ वह खेलते थे; सामान भी वही था, तसवीरें वही, कुर्सियाँ और मेजें वही, शीशे के आलात वही, यहाँ तक कि फर्श भी वही था। उसके अंदर कदम रखते हुए आचार्य महाशय के हृदय में कुछ वही भाव जागृत हो रहे थे, जो किसी देवता के मंदिर में जाकर धर्मपरायण हिंदू के हृदय में होते हैं। वह रत्ना के शयनागार में पहुँचे तो उनके हृदय में ऐसी ऐंठन हुई कि आँसू बहने लगे- यह वही पलंग है, वही बिस्तर और वही फर्श ! उन्होंने अधीर होकर पूछा- यह किसका बँगला है ?

कम्पनी का मैनेजर साथ था, बोला- एक राय भोलानाथ हैं, उन्हीं का है।

आचार्य- रायसाहब कहाँ गये ?

मैनेजर- खुदा जाने कहाँ चले गये। यह बँगला कर्ज की इल्लत में नीलाम हो रहा था। मैंने देखा हमारे थियेटर से करीब है। अधिकारियों से खतोकिताबत की और इसे कम्पनी के नाम खरीद लिया, 40 हजार में यह बँगला सामान समेत लिया गया।

आचार्य- मुफ्त मिल गया, तुम्हें रायसाहब की कुछ खबर नहीं ?

मैनेजर- सुना था कि कहीं तीर्थ करने गये थे, खुदा जाने लौटे या नहीं।

आचार्य महाशय जब शाम को सावधान होकर बैठे तो एक आदमी से पूछा- क्यों जी, उस्ताद घूरे का भी हाल जानते हो, उनका नाम बहुत सुना है।

आदमी ने सकरुण भाव से कहा- खुदाबंद, उनका हाल कुछ न पूछिए, शराब पीकर घर आ रहे थे, रास्ते में बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़े। उधर से एक मोटर लारी आ रही थी। ड्राइवर ने देखा नहीं, लारी उनके ऊपर से निकल गयी। सुबह को लाश मिली। खुदाबंद, अपने फन में एक था, अब उसकी मौत से लखनऊ वीरान हो गया, अब ऐसा कोई नहीं रहा जिस पर लखनऊ को घमंड हो। नथुवा नाम के एक लड़के को उन्होंने कुछ सिखाया था और उससे हम लोगों को उम्मीद थी कि उस्ताद का नाम जिंदा रखेगा, पर वह यहाँ से ग्वालियर चला गया, फिर पता नहीं कि कहाँ गया।

आचार्य महाशय के प्राण सूखे जाते थे कि अब बात खुली, अब खुली, दम रुका हुआ था जैसे कोई तलवार लिये सिर पर खड़ा हो। बारे कुशल हुई, घड़ा चोट खाकर भी बच गया।

5

आचार्य महाशय उस घर में रहते थे, किन्तु उसी तरह जैसे कोई नयी बहू अपने ससुराल में रहे। उनके हृदय से पुराने संस्कार न मिटते थे। उनकी आत्मा इस यथार्थ को स्वीकार न करती कि अब यह मेरा घर है। वह जोर से हँसते तो सहसा चौंक पड़ते। मित्रगण आकर शोर मचाते तो उन्हें एक अज्ञात शंका होती थी। लिखने-पढ़ने के कमरे में शायद वह सोते तो उन्हें रात-भर नींद न आती, यह खयाल दिल में जमा हुआ था कि यह पढ़ने-लिखने का कमरा है। बहुत अच्छा होने पर भी वह पुराने सामान को बदल न सकते थे। और रत्ना के शयनागार को तो उन्होंने फिर कभी नहीं खोला। वह ज्यों-का-त्यों बंद पड़ा रहता था। उसके अंदर जाते हुए उनके पैर थरथराने लगते थे। उस पलंग पर सोने का ध्यान ही उन्हें नहीं आया।

लखनऊ में कई बार उन्होंने विश्वविद्यालय में अपने संगीत-नैपुण्य का चमत्कार दिखाया। किसी राजा-रईस के घर अब वह गाने न जाते थे, चाहे कोई उन्हें लाखों रुपये ही क्यों न दे; यह उनका प्रण था। लोग उनका अलौकिक गान सुनकर अलौकिक आनंद उठाते थे।

एक दिन प्रातःकाल आचार्य महाशय संध्या से उठे थे कि राय भोलानाथ उनसे मिलने आये। रत्ना भी उनके साथ थी। आचार्य महाशय पर रोब छा गया। बड़े-बड़े योरोपी थियेटरों में भी उनका हृदय इतना भयभीत न हुआ था। उन्होंने जमीन तक झुककर रायसाहब को सलाम किया। भोलानाथ उनकी नम्रता से कुछ विस्मति-से हो गये। बहुत दिन हुए जब लोग उन्हें सलाम किया करते थे। अब तो जहाँ जाते थे, हँसी उड़ाई जाती थी। रत्ना भी लज्जित हो गयी। रायसाहब ने कातर नेत्रों से इधर-उधर देखकर कहा- आपको यह जगह तो पसन्द आयी होगी ?

आचार्य- जी हाँ, इससे उत्तम स्थान की तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।

भोलानाथ- यह मेरा ही बँगला है। मैंने ही इसे बनवाया और मैंने ही इसे बिगाड़ भी दिया।

रत्ना ने झेंपते हुए कहा- दादाजी, इन बातों से क्या फायदा ?

भोला- फायदा नहीं है बेटी, नुकसान भी नहीं। सज्जनों से अपनी विपत्ति कहकर चित्त शांत होता है। महाशय, यह मेरा ही बँगला है, या यों कहिए कि था। 50 हजार सालाना इलाके से मिलते थे। कुछ आदमियों की संगत में मुझे सट्टे का चस्का पड़ गया। दो-तीन बार ताबड़-तोड़ बाजी हाथ आयी, हिम्मत खुल गयी, लाखों के वारे-न्यारे होने लगे, किंतु एक ही घाटे में सारी कसर निकल गयी। बधिया बैठ गयी। सारी जायदाद खो बैठा। सोचिए, पचीस लाख का सौदा था। कौड़ी चित्त पड़ती तो आज इस बँगले का कुछ और ही ठाट होता, नहीं तो अब पिछले दिनों को याद कर-करके हाथ मलता हूँ। मेरी रत्ना को आपके गाने से बड़ा प्रेम है। जब देखो आप ही की चर्चा किया करती है। इसे मैंने बी.ए. तक पढ़ाया ...

रत्ना का चेहरा शर्म से लाल हो गया। बोली- दादाजी, आचार्य महाशय मेरा हाल जानते हैं, उनको मेरे परिचय की जरूरत नहीं। महाशय, क्षमा कीजिएगा, पिताजी उस घाटे के कारण कुछ अव्यवस्थित चित्त-से हो गये हैं। वह आपसे यह प्रार्थना करने आये हैं कि यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह कभी-कभी इस बँगले को देखने आया करें। इससे उनके आँसू पुछ जायेंगे। उन्हें इस विचार से सन्तोष होगा कि मेरा कोई मित्र इसका स्वामी है। बस, यही कहने के लिए यह आपकी सेवा में आये हैं।

आचार्य ने विनयपूर्ण शब्दों में कहा- इसके पूछने की जरूरत नहीं है। घर आपका है, जिस वक्त जी चाहे शौक से आयें, बल्कि आपकी इच्छा हो तो आप इसमें रह सकते हैं; मैं अपने लिए कोई दूसरा स्थान ठीक कर लूँगा।

रायसाहब ने धन्यवाद दिया और चले गये। वह दूसरे-तीसरे यहाँ जरूर आते और घंटों बैठे रहते। रत्ना भी उनके साथ अवश्य आती, फिर कुछ दिन बाद प्रतिदिन आने लगे।

एक दिन उन्होंने आचार्य महाशय को एकांत में ले जाकर पूछा- क्षमा कीजिएगा, आप अपने बाल बच्चों को क्यों नहीं बुला लेते? अकेले तो आपको बहुत कष्ट होता होगा।

आचार्य- मेरा तो अभी विवाह नहीं हुआ और न करना चाहता हूँ।

यह कहते ही आचार्य महाशय ने आँखें नीची कर लीं।

भोलानाथ- यह क्यों, विवाह से आपको क्यों द्वेष है ?

आचार्य- कोई विशेष कारण तो नहीं बता सकता, इच्छा ही तो है।

भोला- आप ब्राह्मण हैं ?

आचार्यजी का रंग उड़ गया। सशंक होकर बोले- योरोप की यात्रा के बाद वर्णभेद नहीं रहता। जन्म से चाहे जो कुछ हूँ, कर्म से तो शूद्र ही हूँ।

भोलानाथ- आपकी नम्रता को धन्य है, संसार में ऐसे सज्जन लोग भी पड़े हुए हैं, मैं भी कर्मों ही से वर्ण मानता हूँ। नम्रता, शील, विनय, आचार, धर्मनिष्ठा, विद्याप्रेम, यह सब ब्राह्मणों के गुण हैं और मैं आपको ब्राह्मण ही समझता हूँ। जिसमें यह गुण नहीं, वह ब्राह्मण नहीं; कदापि नहीं। रत्ना को आपसे बड़ा प्रेम है। आज तक कोई पुरुष उसकी आँखों में नहीं जँचा, किंतु आपने उसे वशीभूत कर लिया इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा, आपके माता-पिता ...

आचार्य- मेरे माता-पिता तो आप ही हैं। जन्म किसने दिया, यह मैं स्वयं नहीं जानता। मैं बहुत छोटा था तभी उनका स्वर्गवास हो गया।

रायसाहब- आह ! वह आज जीवित होते तो आपको देखकर उनकी गज-भर की छाती होती। ऐसे सपूत बेटे कहाँ होते हैं !

इतने में रत्ना एक कागज लिये हुए आयी और रायसाहब से बोली- दादाजी, आचार्य महाशय काव्य-रचना भी करते हैं, मैं इनकी मेज पर से यह उठा लायी हूँ। सरोजिनी नायडू के सिवा ऐसी कविता मैंने और कहीं नहीं देखी।
आचार्य ने छिपी हुई निगाहों से एक बार रत्ना को देखा और झेंपते हुए बोले- यों ही कुछ लिख लिया था। मैं काव्य-रचना क्या जानूँ ?

प्रेम से दोनों विह्वल हो रहे थे। रत्ना गुणों पर मोहित थी, आचार्य उसके मोह के वशीभूत थे। अगर रत्ना उनके रास्ते में न आती तो कदाचित् वह उससे परिचित भी न होते ! किंतु प्रेम की फैली हुई बाहों का आकर्षण किस पर न होगा ? ऐसा हृदय कहाँ है, जिसे प्रेम जीत न सके ?
आचार्य महाशय बड़ी दुविधा में पड़े हुए थे। उनका दिल कहता था, जिस क्षण रत्ना पर मेरी असलियत खुल जायगी, उसी क्षण वह मुझसे सदैव के लिए मुँह फेर लेगी। वह कितनी ही उदार हो, जाति के बंधन को कितना ही कष्टमय समझती हो, किंतु उस घृणा से मुक्त नहीं हो सकती जो स्वभावतः मेरे प्रति उत्पन्न होगी। मगर इस बात को जानते हुए भी उनकी हिम्मत न पड़ती थी कि अपना वास्तविक स्वरूप खोलकर दिखा दें। आह ! यदि घृणा ही तक होती तो कोई बात न थी, मगर उसे दुःख होगा, पीड़ा होगी, उसका हृदय विदीर्ण हो जायगा, उस दशा में न जाने क्या कर बैठे। उसे इस अज्ञात दशा में रखते हुए प्रणय-पाश को दृढ़ करना उन्हें परले सिरे की नीचता प्रतीत होती थी। यह कपट है, दगा है, धूर्तता है जो प्रेमाचरण में सर्वथा निषिद्ध है। इस संकट में पड़े हुए वह कुछ निश्चय न कर सकते थे कि क्या करना चाहिए। उधर रायसाहब की आमदोरफ़्त दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। उनके मन की बात एक-एक शब्द से झलकती थी। रत्ना का आना-जाना बंद होता जाता था जो उनके आशय को और भी प्रकट करता था। इस प्रकार तीन-चार महीने व्यतीत हो गये। आचार्य महाशय सोचते, यह वही रायसाहब हैं, जिन्होंने केवल रत्ना की चारपाई पर जरा देर लेट रहने के लिए मुझे मारकर घर से निकाल दिया था। जब उन्हें मालूम होगा कि मैं वही अनाथ, अछूत, आश्रयहीन बालक हूँ तो उन्हें कितनी आत्मवेदना, कितनी अपमान-पीड़ा, कितनी लज्जा, कितनी दुराशा, कितना पश्चात्ताप होगा !

एक दिन रायसाहब ने कहा- विवाह की तिथि निश्चित कर लेनी चाहिए। इस लग्न में मैं इस ऋण से उऋण हो जाना चाहता हूँ।

आचार्य महाशय ने बात का मतलब समझकर भी प्रश्न किया- कैसी तिथि ?

रायसाहब- यही रत्ना के विवाह की। मैं कुंडली का तो कायल नहीं, पर विवाह तो शुभ मुहूर्त में ही होगा।
आचार्य भूमि की ओर ताकते रहे, कुछ न बोले।

रायसाहब- मेरी अवस्था तो आपको मालूम ही है। कुश-कन्या के सिवा और किसी योग्य नहीं हूँ। रत्ना के सिवा और कौन है, जिसके लिए उठा रखता।

आचार्य महाशय विचारों में मग्न थे।

रायसाहब- रत्ना को आप स्वयं जानते हैं। आपसे उसकी प्रशंसा करनी व्यर्थ है। वह अच्छी है या बुरी है, उसे आपको स्वीकार करना पड़ेगा।

आचार्य महाशय की आँखों से आँसू बह रहे थे।

रायसाहब- मुझे पूरा विश्वास है कि आपको ईश्वर ने उसी के लिए यहाँ भेजा है। मेरी ईश्वर से यही याचना है कि तुम दोनों का जीवन सुख से कटे। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती। इस कर्त्तव्य से मुक्त होकर इरादा है कुछ दिन भगवत्-भजन करूँ। गौण रूप से आप ही उस फल के भी अधिकारी होंगे।

आचार्य ने अवरुद्ध कंठ से कहा- महाशय, आप मेरे पिता तुल्य हैं, पर मैं इस योग्य कदापि नहीं हूँ।

रायसाहब ने उन्हें गले लगाते हुए कहा- बेटा, तुम सर्वगुण-सम्पन्न हो। तुम समाज के भूषण हो। मेरे लिए यह महान गौरव की बात है कि तुम-जैसा दामाद पाऊँ। मैं आज तिथि आदि ठीक करके कल आपको सूचना दूँगा।

यह कहकर रायसाहब उठ खड़े हुए। आचार्य कुछ कहना चाहते थे, पर मौका न मिला, या यों कहो हिम्मत न पड़ी। इतना मनोबल न था, घृणा सहन करने की इतनी शक्ति न थी।

7

विवाह हुए महीना-भर हो गया। रत्ना के आने से पतिगृह उजाला हो गया है और पति-हृदय पवित्र। सागर में कमल खिल गया। रात का समय था। आचार्य महाशय भोजन करके लेटे हुए थे, उसी पलंग पर जिसने किसी दिन उन्हें घर से निकलवाया था, जिसने उनके भाग्यचक्र को परिवर्तित कर दिया था।

महीना-भर से वह अवसर ढूँढ़ रहे हैं कि वह रहस्य रत्ना को बतला दूँ। उनका संस्कारों से दबा हुआ हृदय यह नहीं मानता कि मेरा सौभाग्य मेरे गुणों ही का अनुग्रह है। वह अपने रुपये को भट्ठी में पिघलाकर उसका मूल्य जानने की चेष्टाकर रहे हैं। किन्तु अवसर नहीं मिलता। रत्ना ज्यों ही सामने आ जाती है, वह मंत्रमुग्ध से हो जाते हैं। बाग में रोने कौन जाता है, रोने के लिए तो अँधेरी कोठरी ही चाहिए।

इतने में रत्ना मुस्कराती हुई कमरे में आयी। दीपक की ज्योति मंद पड़ गयी।

आचार्य ने मुस्कराकर कहा- अब चिराग गुल कर दूँ न ?

रत्ना बोली- क्यों, क्या मुझसे शर्म आती है ?

आचार्य- हाँ, वास्तव में शर्म आती है।

रत्ना- इसलिए कि मैंने तुम्हें जीत लिया ?

आचार्य- नहीं, इसलिए कि मैंने तुम्हें धोखा दिया।

रत्ना- तुममें धोखा देने की शक्ति नहीं है।

आचार्य- तुम नहीं जानतीं। मैंने तुम्हें बहुत बड़ा धोखा दिया है।

रत्ना- सब जानती हूँ।

आचार्य- जानती हो मैं कौन हूँ ?

रत्ना- खूब जानती हूँ। बहुत दिनों से जानती हूँ। जब हम तुम दोनों इसी बगीचे में खेला करते थे, मैं तुमको मारती थी और तुम रोते थे, मैं तुमको अपनी जूठी मिठाइयाँ देती थी और तुम दौड़कर लेते थे, तब भी मुझे तुमसे प्रेम था; हाँ, वह दया के रूप में व्यक्त होता था।

आचार्य ने चकित हो कहा- रत्ना, यह जानकर भी तुमने ...

रत्ना- हाँ, जान कर ही। न जानती तो शायद न करती।

आचार्य- यह वही चारपाई है।

रत्ना- और मैं घाते में।

आचार्य ने उसे गले लगाकर कहा- तुम क्षमा की देवी हो।

रत्ना ने उत्तर दिया- मैं तुम्हारी चेरी हूँ।

आचार्य- रायसाहब भी जानते हैं ?

रत्ना- नहीं, उन्हें नहीं मालूम है। उनसे भूलकर भी न कहना, नहीं तो वह आत्मघात कर लेंगे।
आचार्य- वह कोड़े अभी तक याद हैं।

रत्ना- अब पिताजी के पास उसका प्रायश्चित्त करने के लिए कुछ नहीं रह गया। क्या अब भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ ?